Topic 93

चतुर्थी विभक्ति ।

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् ।

दान कर्म के द्वारा कर्ता को जो अभिप्रेत है वह सम्प्रदान संज्ञक है ।

चतुर्थी सम्प्रदाने ।

सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात् । विप्राय गां ददाति । अनभिहित इत्येव । दानीयो विप्रः ।।

अनभिहित (अनुक्त) सम्प्रदान में चतुर्थी हो । विप्राय गां ददाति । इसमें कर्ता को दान-क्रिया के कर्म गो द्वारा विप्र अभिप्रेत है, अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है तथा चतुर्थी सम्प्रदाने से उसमें चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त होती है । यह चतुर्थी अनुक्त सम्प्रदान में ही होती है । अतः दानीयो विप्रः इसमें नहीं होती, क्योंकि दानीय शब्द सम्प्रदान में दा धातु से अनीयर प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है । अर्थात् जिसके लिए कुछ दिया जाय वह विप्र । अतः यहाँ उक्त सम्प्रदान में प्रथमा प्रयुक्त होती है । इसी प्रकार छात्राय पुस्तकं ददाति । आर्यिणे धनं देयम् ।

क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् पत्ये शेते । (वा०)

P.T.O.

क्रिया के द्वारा कर्ता जिसको चाहे वह भी सम्प्रदान हो। पत्ये शेते – इस उदाहरण में शयनक्रिया द्वारा (पत्नी कर्त्री) पति को चाहती है, अतः उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है तथा उसमें चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त होती है। एवमेव 'पत्ये जागर्ति विरहिणी' इस उदाहरण में विरहिणी कर्त्री को जागरण क्रिया के द्वारा पति अभीष्ट है। वह उसी के विरह में जागरण कर रही है। 'पुत्राय जीवति जरातुरा माता' जराजीर्ण माता पुत्र के लिए जीवित रहती है। 'व्रजे तिष्ठन्ति कृष्णाय सखायो गोपबालकाः'। इसी उदाहरण में गोपबालक व्रज में कृष्ण के लिए सखा स्थित रहते हैं, अतः उनको व्रज में स्थिति क्रिया के द्वारा कृष्ण अभीष्ट है।

कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा (वा०)

पशुना रुद्रं यजते। पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः। कर्म की करणसंज्ञा है तथा सम्प्रदान की कर्मसंज्ञा है। उपर्युक्त उदाहरण में 'पशुना' यह तृतीया पशु कर्म की करणसंज्ञा होने से होती है। और 'रुद्रं' यह द्वितीया रुद्र – सम्प्रदान की कर्म संज्ञा होने से होती है। उदाहरण का अर्थ है – (यजमान) पशु से रुद्र को पूजता है। अर्थात् पशु रुद्र के लिए देता है। एवमेव बिल्व – पत्रादिना शिवं यजते – बिल्वपत्रादि शिवाय समर्पयतीत्यर्थः। गन्धमाल्यादिना विष्णुं यजते – गन्धमाल्यादि विष्णवे समर्पयतीति तात्पर्यम्।

रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।

रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः (प्रीयमाणोऽर्थः प्रीतिकर्ता सम्बन्धेन प्रीत्याश्रयः) सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् । हरये रोचते भक्तिः । अनन्य कर्तृकोऽभिलाषो रुचिः । हरिनिष्ठप्रीतेर्भक्तिः कर्त्री । प्रीयमाणः किम् ? देवदत्ताय रोचते मोदकैः पथि ।

रुचि अर्थवाले धातुओं के प्रयोग में जिसको रुचे वह सम्प्रदानसंज्ञक हो। हरये रोचते भक्तिः — इस उदाहरण में भक्ति से प्रसन्न होने वाला हरि है, अतः हरि की सम्प्रदान संज्ञा होती है और तब सम्प्रदान में चतुर्थी होती है। अनन्यकर्तृकोऽभिलाषो रुचिः = विषयता संबंध से जो प्रीत्याश्रय से अभिन्न कर्ता वाला है वह अभिलाष रुचि कहलाता है। हरिनिष्ठप्रीतेर्भक्तिः कर्त्री हरि में स्थित प्रीति की कर्त्री भक्ति है। सारांश यह है कि भक्ति ने हरि में भक्त के प्रति प्रीति उत्पन्न कर दी है। अतः उसे भक्ति अच्छी लगती है। ग्रंथकार प्रश्न करता है कि सूत्र में ~~(प्रीयमाणो) ग्रहण करने से यहाँ पथ की~~

ग्रहण क्यों किया ? उत्तर देता है — प्रीयमाणः का ग्रहण क्यों किया ? उत्तर देता है- देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि । सूत्र में प्रीयमाणो ग्रहण करने से यहाँ पथ की सम्प्रदान संज्ञा नहीं होती । अतएव उसमें चतुर्थी भी नहीं होती, अपितु अधिकरण में सप्तमी होती है। आशय यह है कि पथ प्रीयमाण नहीं है प्रीत्याश्रय तो देवदत्त है, अतः उसमें ही चतुर्थी होती है। मार्ग में देवदत्त को मोदक रुचता है।

यह प्रत्युदाहरण का [illegible] है। यदि
प्रीसमास का ग्रहण नहीं होगा तो पति के स्थान में अनिष्ट चतुर्थी होजाने से 'पत्ये' प्रयोग होगा। एवमेव - हरये रोचते भक्तिः, भक्ताय तदनुग्रहः (रोचते) हरि को (भक्त की) भक्ति अच्छी लगती है और भक्त को हरि का अनुग्रह अच्छा लगता है।